गजेन्द्र मोक्ष

श्रीमद्भागवत् के अष्टम स्कन्ध में गजेन्द्र मोक्ष की कथा है । द्वितीय अध्याय में ग्राह के साथ गजेन्द्र के युद्ध का वर्णन है, तृतीय अध्याय में गजेन्द्रकृत भगवान के स्तवन और गजेन्द्र मोक्ष का प्रसंग है और चतुर्थ अध्याय में गज ग्राह के पूर्व जन्म का इतिहास है । श्रीमद्भागवत् में गजेन्द्र मोक्ष आख्यान के पाठ का माहात्म्य बतलाते हुए इसको स्वर्ग तथा यशदायक, कलियुग के समस्त पापों का नाशक, दुःस्वप्न नाशक और श्रेयसाधक कहा गया है। तृतीय अध्याय का स्तवन बहुत ही उपादेय है । इसकी भाषा और भाव सिद्धांत के प्रतिपादक और बहुत ही मनोहर हैं ।

(सामग्री – गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित गजेन्द्र मोक्ष पुस्तिका से साभार)

श्रीमद्भागवतान्तर्गत
गजेन्द्र कृत भगवान का स्तवन

****

श्री शुक उवाच – श्री शुकदेव जी ने कहा

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम ॥१॥

बुद्धि के द्वारा पिछले अध्याय में वर्णित रीति से निश्चय करके तथा मन को हृदय देश में स्थिर करके वह गजराज अपने पूर्व जन्म में सीखकर कण्ठस्थ किये हुए सर्वश्रेष्ठ एवं बार–बार दोहराने योग्य निम्नलिखित स्तोत्र का मन ही मन पाठ करने लगा ॥१॥

गजेन्द्र उवाच गजराज ने (मन ही मन) कहा –

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम ।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥१॥

जिनके प्रवेश करने पर (जिनकी चेतना को पाकर) ये जड शरीर और मन आदि भी चेतन बन जाते हैं (चेतन की भांति व्यवहार करने लगते हैं), 'ॐ' शब्द के द्वारा लक्षित तथा सम्पूर्ण शरीर में प्रकृति एवं पुरुष रूप से प्रविष्ट हुए उन सर्व समर्थ परमेश्वर को हम मन ही मन नमन करते हैं ॥२॥

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयं ।
योस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम ॥३॥

जिनके सहारे यह विश्व टिका है, जिनसे यह निकला है, जिन्होने इसकी रचना की है और जो स्वयं ही इसके रूप में प्रकट हैं – फिर भी जो इस दृश्य जगत से एवं इसकी कारणभूता प्रकृति से सर्वथा

परे (विलक्षण) एवं श्रेष्ठ हैं – उन अपने आप – बिना किसी कारण के – बने हुए भगवान की मैं शरण लेता हूं ॥३॥

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम ।
अविद्धदृक साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्ममूलोवतु मां परात्परः ॥४॥

अपने संकल्प शक्ति के द्वार अपने ही स्वरूप में रचे हुए और इसीलिये सृष्टिकाल में प्रकट और प्रलयकाल में उसी प्रकार अप्रकट रहने वाले इस शास्त्र प्रसिद्ध कार्य कारण रूप जगत को जो अकुण्ठित दृष्टि होने के कारण साक्षी रूप से देखते रहते हैं उनसे लिप्त नहीं होते, वे चक्षु आदि प्रकाशकों के भी परम प्रकाशक प्रभु मेरी रक्षा करें ॥४॥

कालेन पंचत्वमितेषु कृत्स्नशो लोकेषु पालेषु च सर्व हेतुषु ।
तमस्तदाल्ल्ल्सीद गहनं गभीरं यस्तस्य पारेलभिविराजते विभुः ॥५॥

समय के प्रवाह से सम्पूर्ण लोकों के एवं ब्रह्मादि लोकपालों के पंचभूत में प्रवेश कर जाने पर तथा पंचभूतों से लेकर महत्वपर्यंत सम्पूर्ण कारणों के उनकी परमकरुणारूप प्रकृति में लीन हो जाने पर उस समय दुर्ज्ञेय तथा अपार अंधकाररूप प्रकृति ही बच रही थी। उस अंधकार के परे अपने परम धाम में जो सर्वव्यापक भगवान सब ओर प्रकाशित रहते हैं वे प्रभु मेरी रक्षा करें ॥५॥

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु–र्जन्तुः पुनः कोर्ल्हति गन्तुमीरितुम ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥६॥

भिन्न–भिन्न रूपों में नाट्य करने वाले अभिनेता के वास्तविक स्वरूप को जिस प्रकार साधारण दर्शक नहीं जान पाते, उसी प्रकार सत्त्व प्रधान देवता तथा ऋषि भी जिनके स्वरूप को नहीं जानते, फिर दूसरा साधारण जीव तो कौन जान अथवा वर्णन कर सकता है–वे दुर्गम चरित्र वाले प्रभु मेरी रक्षा करें ॥६॥

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमंगलम विमुक्त संगा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतत्मभूता सुहृदः स मे गतिः ॥७॥

आसक्ति से सर्वदा छूटे हुए, सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मबुद्धि रखने वाले, सबके अकारण हितू एवं अतिशय साधु स्वभाव मुनिगण जिनके परम मंगलमय स्वरूप का साक्षात्कार करने की इच्छा से वन में रह कर अखण्ड ब्रह्मचार्य आदि अलौकिक व्रतों का पालन करते हैं, वे प्रभु ही मेरी गति हैं ॥७॥

न विद्यते यस्य न जन्म कर्म वा न नाम रूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्ययाम्भवाय यः स्वमायया तान्युलाकमृच्छति ॥८॥

जिनका हमारी तरह कर्मवश ना तो जन्म होता है और न जिनके द्वारा अहंकार प्रेरित कर्म ही होते हैं, जिनके निर्गुण स्वरूप का न तो कोई नाम है न रूप ही, फिर भी समयानुसार जगत की सृष्टि एवं प्रलय (संहार) के लिये स्वेच्छा से जन्म आदि को स्वीकार करते हैं ॥८॥

तस्मै नमः परेशाय ब्राह्मणेल्नन्तशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्य कर्मणे ॥९॥

उन अन्नतशक्ति संपन्न परं ब्रह्म परमेश्वर को नमस्कार है । उन प्राकृत आकाररहित एवं अनेकों आकारवाले अद्‌भुतकर्मा भगवान को बारंबार नमस्कार है ॥९॥

नम आत्म प्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥१०॥

स्वयं प्रकाश एवं सबके साक्षी परमात्मा को नमस्कार है । उन प्रभु को जो मन, वाणी एवं चित्तवृत्तियों से भी सर्वथा परे हैं, बार–बार नमस्कार है ॥१०॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।
नमः केवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥११॥

विवेकी पुरुष के द्वारा सत्त्वगुणविशिष्ट निवृत्तिधर्म के आचरण से प्राप्त होने योग्य, मोक्ष सुख की अनुभूति रूप प्रभु को नमस्कार है ॥११॥

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुण धर्मिणे ।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥१२॥

सत्त्वगुण को स्वीकार करके शान्त, रजोगुण को स्वीकर करके घोर एवं तमोगुण को स्वीकार करके मूढ से प्रतीत होने वाले, भेद रहित, अतएव सदा समभाव से स्थित ज्ञानघन प्रभु को नमस्कार है ॥१२॥

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।
पुरुषायात्ममूलय मूलप्रकृतये नमः ॥१३॥

शरीर इन्द्रीय आदि के समुदाय रूप सम्पूर्ण पिण्डों के ज्ञाता, सबके स्वामी एवं साक्षी रूप आपको नमस्कार है । सबके अन्तर्यामी, प्रकृति के भी परम कारण, किन्तु स्वयं कारण रहित प्रभु को नमस्कार है ॥१३॥

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे ।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासय ते नमः ॥१४॥

सम्पूर्ण इन्द्रियों एवं उनके विषयों के ज्ञाता, समस्त प्रतीतियों के कारण रूप, सम्पूर्ण जड–प्रपंच एवं सबकी मूलभूता अविद्या के द्वारा सूचित होने वाले तथा सम्पूर्ण विषयों में अविद्यारूप से भासने वाले आपको नमस्कार है ॥१४॥

नमो नमस्ते खिल कारणाय निष्कारणायद्भुत कारणाय ।
सर्वागमान्मायमहार्णवाय नमोपवर्गाय परायणाय ॥१५॥

सबके कारण किंतु स्वयं कारण रहित तथा कारण होने पर भी परिणाम रहित होने के कारण, अन्य कारणों से विलक्षण कारण आपको बारम्बार नमस्कार है । सम्पूर्ण वेदों एवं शास्त्रों के परम तात्पर्य, मोक्षरूप एवं श्रेष्ठ पुरुषों की परम गति भगवान को नमस्कार है ॥१५॥

गुणारणिच्छन्न चिदूष्मपाय तत्क्षोभविस्फूर्जित मान्साय ।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम–स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥१६॥

जो त्रिगुणरूप काष्ठों में छिपे हुए ज्ञानरूप अग्नि हैं, उक्त गुणों में हलचल होने पर जिनके मन में सृष्टि रचने की बाह्य वृत्ति जागृत हो उठती है तथा आत्म तत्त्व की भावना के द्वारा विधि निषेध रूप शास्त्र से ऊपर उठे हुए ज्ञानी महात्माओं में जो स्वयं प्रकाशित हो रहे हैं उन प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोल्लयाय ।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत–प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥१७॥

मुझ जैसे शरणागत पशुतुल्य (अविद्याग्रस्त) जीवों की अविद्यारूप फाँसी को सदा के लिये पूर्णरूप से काट देने वाले अत्याधिक दयालु एवं दया करने में कभी आलस्य ना करने वाले नित्यमुक्त प्रभु को नमस्कार है । अपने अंश से संपूर्ण जीवों के मन में अन्तर्यामी रूप से प्रकट रहने वाले सर्व नियन्ता अनन्त परमात्मा आप को नमस्कार है ॥१७॥

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै–र्दुष्प्रापणाय गुणसंगविवर्जिताय ।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥१८॥

शरीर, पुत्र, मित्र, घर, संपंत्ती एवं कुटुंबियों में आसक्त लोगों के द्वारा कठिनता से प्राप्त होने वाले तथा मुक्त पुरुषों के द्वारा अपने हृदय में निरन्तर चिन्तित ज्ञानस्वरूप, सर्वसमर्थ भगवान को नमस्कार है ॥१८॥

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेदभ्रदयो विमोक्षणम ॥१९॥

जिन्हे धर्म, अभिलाषित भोग, धन तथा मोक्ष की कामना से भजने वाले लोग अपनी मनचाही गति पा लेते हैं अपितु जो उन्हे अन्य प्रकार के अयाचित भोग एवं अविनाशी पार्षद शरीर भी देते हैं वे अतिशय दयालु प्रभु मुझे इस विपत्ती से सदा के लिये उबार लें ॥१९॥

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमंगलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः॥२०॥

जिनके अनन्य भक्त– जो वस्तुतः एकमात्र उन भगवान् के ही शरण हैं– धर्म, अर्थ आदि किसी भी पदार्थ को नहीं चाहते, अपितु उन्हीं के परम मंगलमय एवं अत्यन्त विलक्षण चरित्रों का गान करते हुए आनन्द के समुद्र के गोते लगाते रहते हैं ॥२०॥

तमक्षरं ब्रह्म परं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम्।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरमनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे॥२१॥

उन अविनाशी, सर्वव्यापाक, सर्वश्रेष्ठ, ब्रह्मादि के भी नियामक, अभक्तों के लिये अप्रकट होने पर भी भक्तियोग द्वारा प्राप्त करने योग्य, अत्यन्त निकट होने पर भी माया के आवरण के कारण अत्यन्त दूर प्रतीत होनेवाले, इन्द्रियों के द्वारा अगम्य तथा अत्यन्त दुर्विज्ञेय, अन्तरहित किन्तु सबके आदि कारण एवं सब ओर से परिपूर्ण उन भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ ॥२१॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः।
नामरुपविभेदेन फलव्या च कलया कृताः॥२२॥

ब्रह्मादि समस्त देवता, चारों वेद तथा सम्पूर्ण चराचर जीव नाम और आकृति के भेद से जिनके अत्यन्त क्षुद्र अंश के द्वारा रचे गये हैं ॥२२॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यान्ति संयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः।
तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः॥२३॥

जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि से लपटें तथा सूर्य से किरणें बार–बार निकलती हैं और पुनः अपने कारण में लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ और नाना योनियों के शरीर–यह गुणमय प्रपञ्च जिन स्वयंप्रकाश परमात्मा से प्रकट होता है और पुनः उन्हीं में लीन हो जाता है॥२३॥

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ् न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन् निषेधशेषो जयतादशेषः॥२४॥

वे भगवान् वास्तव में न तो देवता हैं, न असुर, न मनुष्य हैं न तिर्यक् (मनुष्य से नीची–पशु, पक्षी आदि किसी) योनी के प्राणी हैं। न वे स्त्री हैं न पुरुष और न नपुंसक ही हैं। न वे ऐसे कोई जीव हैं जिनका इन तीनों ही श्रेणियों में समावेश न हो सके। न वे गुण हैं न कर्म, न कार्य हैं न तो कारण ही।

सबका निषेध हो जाने पर जो कुछ बच रहता है, वही उनका स्वरुप है और वे ही सब कुछ हैं। ऐसे भगवान् मेरे उद्धार के लिये आविर्भूत हों ॥२४॥

जिजीविषे नाहमिहामुया किमन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम्॥२५॥

मैं इस ग्राह के चंगुल से छूटकर जीवित रहना नहीं चाहता; क्योंकि भीतर और बाहर–सब ओर से अज्ञान के द्वारा ढके हुए इस हाथी के शरीर से मुझे क्या लेना है। मैं तो आत्मा के प्रकाश को ढक देने वाले उस अज्ञान की निवृत्ति चाहता हूँ, जिसका कालक्रम से अपने–आप नाश नहीं होता, अपितु भगवान् की दया से अथवा ज्ञान के उदय से होता है॥२५॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम्।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम्॥२६॥

इस प्रकार मोक्ष का अभिलाषी मैं विश्व के रचयिता, स्वयं विश्व के रुप में प्रकट तथा विश्व से सर्वथा परे, विश्व को खिलौना बनाकर खेलने वाले, विश्व में आत्मारुप से व्याप्त, अजन्मा, सर्वव्यापक एवं प्राप्तव्य वस्तुओं में सर्वश्रेष्ठ श्रीभगवान् को केवल प्रणाम ही करता हूँ–उनकी शरण में हूँ॥२६॥

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम्॥२७॥

जिन्होंने भगवद्भक्तिरुप योग के द्वारा कर्मों को जला डाला है, वे योगी लोग उसी योग के द्वारा शुद्ध किये हुए अपने हृदय में जिन्हें प्रकट हुआ देखते हैं, उन योगेश्वर भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ॥२७॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेगशक्तित्रयायाखिलधीगुणाय।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने॥२८॥

जिनकी त्रिगुणात्मक (सत्त्व–रज–तमरुप) शक्तियों का रागरुप वेग असह्य है, जो सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयरुप में प्रतीत हो रहे हैं, तथापि जिनकी इन्द्रियाँ विषयों में ही रची–पची रहती हैं– ऐसे लोगों को जिनका मार्ग भी मिलना असम्भव है, उन शरणागतरक्षक एवं अपार शक्तिशाली आपको बार–बार नमस्कार है॥२८॥

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम्।
तं दुरत्ययामाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम्॥२९॥

जिनकी अविद्या नामक शक्ति के कार्यरुप अहंकार से ढके हुए अपने स्वरुप को यह जीव जान नहीं पाता, उन अपार महिमावाले भगवान् की शरण आया हूँ॥२९॥

श्री शुक उवाच
एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं ब्रह्मादयो विविधलिंगभिदाभिमानाः।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात् तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत्॥३०॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा–
जिसने पूर्वोक्त प्रकार से भगवान् के भेदरहित निराकार स्वरुप का वर्णन किया था, उस गजराज के समीप जब ब्रह्मा आदि कोई भी देवता नहीं आये, जो भिन्न–भिन्न प्रकार के विशिष्ट विग्रहों को ही अपना स्वरुप मानते हैं, तब साक्षात् श्रीहरि–जो सबके आत्मा होने के कारण सर्वदेवस्वरुप हैं–वहाँ प्रकट हो गये॥३०॥

तं तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानश्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः॥३१॥

उपर्युक्त गजराज को उस प्रकार दुःखी देखकर तथा उसके द्वारा पढ़ी हुई स्तुति को सुनकर सुदर्शन–चक्रधारी जगदाधार भगवान् इच्छानुरुप वेग वाले गरुड़जी की पीठ पर सवार हो स्तवन करते हुए देवताओं के साथ तत्काल उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ वह हाथी था॥३१॥

सोऽन्तस्सरस्युरुबलेन गृहीत आर्त्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम्।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते॥३२॥

सरोवर के भीतर महाबली ग्राह के द्वारा पकड़े जाकर दुःखी हुए उस हाथी ने आकाश में गरुढ़ की पीठ पर चक्र को उठाये हुए भगवान् श्रीहरि को देखकर अपनी सूँड़ को– जिसमें उसने (पूजा के लिये) कमल का एक फूल ले रखा था–ऊपर उठाया और बड़ी ही कठिनता से 'सर्वपूज्य भगवान् नारायण, आपको प्रणाम है', यह वाक्य कहा॥३२॥

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं सम्पश्यतां हरिमूमुचदुस्त्रियाणाम्॥३३॥

उसे पीड़ित देखकर अजन्मा श्रीहरि एकाएक गरुढ़ को छोड़कर नीचे झील पर उतर आये। वे दया से प्रेरित हो ग्राहसहित उस गजराज को तत्काल झील से बाहर निकाल लाये और देवताओं के देखते–देखते चक्र से उस ग्राह का मुँह चीरकर उसके चंगुल से हाथी को उबार लिया॥३३॥